'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १४५ } वाराणसी, गुरुवार, १७ दिसम्बर, १९५९ { पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

ममदोट (पंजाब) २१-११-'५९

अब जमीन की मालकियत टिक नहीं सकती

लोग बहुत श्रद्धा से हमारी बात सुनने के लिए आते हैं। गरीब और बेजमीन लोगों के मन में अब यह विश्वास पैदा होता जा रहा है कि अब यह एक मनुष्य (विनोबा) आया है, जो हमें जमीन देता है। आठ साल से सारे देश में ऐसी हवा बन रही है। पर इससे जमीन के मालिक कहीं-कहीं शक्त बन गये हैं। वे अपनी जमीन का पक्का इन्तजाम करने में लगे हैं। अपनी जमीन को बचाने के खयाल से कई लोग एकदम स्वतन्त्र पार्टी में मिल गये हैं। वे समझते हैं कि स्वतन्त्र पार्टी में मिलने से हमारी जमीन बच जायगी। मगर मैं उन सबसे कहना चाहता हूँ कि अब जमीन की मालकियत टिकनेवाली नहीं है, जिस तरह आप सब जानते हैं कि लड़की घर में रहनेवाली नहीं है, उसे तो योग्य आदमी ढूँढ़कर उसके हाथों में दे देनी होती है, वैसे ही जमीन भी लड़की की तरह है। यह भी आपके पास रहनेवाली नहीं है। चाहे आप स्वतन्त्र पार्टी में रहें या और किसी दूसरी पार्टी में। मगर यह निश्चित है कि अब यह जमीन उन लोगों के पास चली जाना चाहती है, जो खेती करना जानते हैं और जो बेजमीन हैं। इसलिए आपसे मैं कहना चाहता हूँ कि अभी समय रहते ही आपने जमीन देकर उन बेजमीन मजदूरों को अपना लिया तो वे आपके लिए मर मिटेंगे। दोनों की एक-दूसरे के लिए मर मिटने की तैयारी होगी; तभी देश बच सकेगा।

ग्रामदान का अर्थ : सह-जीवन

लोग कहते थे कि पंजाब में ग्रामदान नामुमकिन है। मैं उनकी बातें सुनता था और कहता था कि जैसी परमेश्वर की इच्छा होगी, वैसा ही होगा। लेकिन अब आप क्या देख रहे हैं ? पंजाब में १८ ग्रामदान हुए हैं। वे ग्राम छोटे भी हैं और बड़े भी। ग्रामदान में छोटे-बड़े की कीमत नहीं है, इसमें तो सबके साथ होने की और मिल-जुलकर काम करने की बात है। आप मिलकर रहेंगे तो आपकी ताकत बनेगी और आपस में टकरायेंगे तो आपको सरकार, वकील, साहूकार आदि सभीके सामने झुकना पड़ेगा। क्या आप हरएक के सामने झुकना पसन्द करेंगे ? ग्रामदान में झुकने की बात नहीं है। इसमें सहजीवन की बात है। सहजीवन से बहुत सी तकलीफें दूर की जा सकती हैं।

ग्राम-व्यवस्था

मान लीजिये, किसीके घर में शादी हो रही है। उसे २०० रुपये कर्ज की जरूरत है। कोई साहूकार उसे कर्ज पर रुपये दे देता है। फिर सूद और मूलधन चुकाने में कर्ज लेनेवाले की जिन्दगी ही खतम हो जाती है। वह शादी हुई या बर्बादी ? ग्रामदान में शादी बर्बादी का रूप लेकर नहीं आयेगी। ग्रामदानी गाँवों के हर घर की शादी के लिए बैंक होगा। शादी याने गाँव का उत्सव होगा। गाँव के उत्सव में जैसे सारे लोग भाग लेते हैं, वैसे ही शादी के काम में भी लोग भाग लेंगे। फिर शादी करनेवाले को कर्ज से दबना नहीं पड़ेगा।

खेतों में फसल लगी हुई है। खेतवाला अपने पड़ोसी के बैलों तथा जानवरों के डर से जागता रहता है। उसका पड़ोसी भी उसके बैलों और जानवरों के डर से जागता रहता है। एक-दूसरे के डर से दोनों जागते हैं। ग्रामदानी गाँवों में दोनों को नहीं जागना होगा। वे आपस में बात करके खेतों की सुरक्षा का बंदोबस्त कर सकेंगे। अगर अब इस तरह लोग मिल-जुलकर रहना नहीं सीखेंगे तो शहरवाले आपको लूटते रहेंगे। आप शहरवालों से कपड़ा खरीदते हैं, तेल खरीदते हैं और दूसरी चीजें खरीदते हैं। क्या आप उन चीजों को अपने गाँवों में नहीं तैयार कर सकते ? आप गाँववाले मिल-जुलकर रहें तो गाँव को जितना कपड़ा चाहिए, उतना गाँव में ही तैयार करने की योजना बन सकती है। इसी तरह रोजमर्रा जरूरत की जितनी दूसरी चीजें चाहिए, वे भी गाँव में ही तैयार की जा सकती हैं। गाँव की योजना गाँव में ही की जाय, इसीसे ग्राम-स्वराज्य की बुनियाद पड़नेवाली है।

विचारवाहक की जरूरत

ग्राम-स्वराज्य के इस विचार को समझाने के लिए हमें सेवकों की जमात चाहिए। ऐसे सेवक, जो घर-घर पहुँचकर सबके सुख-दुःख सुन सकें और सबको समाधान देनेवाले विचार और व्यवहार की बात समझा सकें। फीरोजपुर में हमें तीन-चार आदमी सेवा के लिए मिले। लेकिन क्या वे तीन-चार आदमी १३ लाख लोगों की सेवा कर सकेंगे ? कम से कम ५००० लोगों की

सेवा के लिए एक सेवक तो चाहिए ही। उस सेवक के २० साथी हों, फिर उनके भी साथी हों। इस तरह से हमारा हरएक घर से परिचय हो। हमारे पास हरएक घर की इतनी जानकारी हो कि उनके बारे में सारी बातें जानने के लिए सरकार ही हमारे पास आये। हमारे इस काम में बहनें भी मददगार हो सकती हैं। बहनें घर-घर जायँ और यह पता लगायें कि किस घर में क्या हो रहा है? कहाँ कौन बीमार है? किसी बूढ़ी-बेवा का बेटा मर गया है तो उसकी जमीन का क्या प्रबन्ध है? हम घर-घर में पहुँचें। हर घर में सर्वोदय-पात्र हों।

सर्वोदय में सबकी दिलचस्पी

कल हमसे सरकारी आदमियों ने पूछा कि हम किस तरह से सेवा कर सकते हैं? मैंने कहा :

१. संपत्तिदान दें।

२. आप अपनी माताओं तथा बहनों को इस काम पर लगा दें कि वे घर-घर जाकर हरएक के सुख-दुःख समझें और उसके दुःखों को दूर करने का उपाय बतायें। अगर सरकारी कर्मचारियों के घरों की बहनें ऐसा करने लगेंगी तो ये ७५ लाख नौकर भार नहीं रह जायँगे। एक-एक बहन ५-५ घर से परिचय प्राप्त करे। वह समझे कि उसे हर घर में सर्वोदय-पात्र रखने हैं।

हमने ये बातें बतायीं तो हम लोगों को इसमें दिलचस्पी लगी। हमारे पास ऐसा कोई कार्य नहीं है कि जिसमें लोगों की दिलचस्पी न हो। सर्वोदय में लोगों की बहुत दिलचस्पी है।

● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन   मांगरोल (भरुच) १०-१०-'५८

सर्वोदयवादियों को भी सेना की अनिवार्यता आश्चर्यजनक

आप सब लोग जानते हैं कि आज चरखा-द्वादशी है। तिथि के अनुसार यह गांधीजी का जन्मदिन है।

चरखा-द्वादशी की विधि

इस पीढ़ी के कुछ लोगों ने गांधीजी को देखा है। किन्तु आनेवाली पीढ़ी दूसरे महापुरुषों की गिनती में गांधीजी को भी गिनेगी और यह उत्सव मनायेगी। तब उसकी एक विधि हो जायगी। त्यौहार की कुछ विधियाँ होती हैं। जिनका लक्ष्य है, हमारे हमेशा के जीवन में बदल हो और जीवन में आनन्द बढ़े। जीवन तो हमेशा ही चलता है, किन्तु बीच-बीच में कुछ फेर-बदल हो तो जीवन का रस बढ़ता है। इसी तरह गांधीजी के जन्मदिवस की भी विधि बन जायगी तो लोगों को इसमें रस आयेगा। जिन लोगों को गांधीजी का सहवास और दर्शन होता था, ऐसे लोग जब तक जीवित हैं, तब तक इस तरह के उत्सवों का जीवन के लिए उपयोग हो, इसकी खबरदारी हमें रखनी होगी। गांधीजी स्वयं अपने जन्मदिवस को जन्म-दिन के तौर पर मनाना पसन्द नहीं करते थे। इसीलिए इसका नाम "चरखा-द्वादशी" रखा गया है। चरखा-द्वादशी के दिन जो कोई कातेगा, वह विधि माना जायगा।

व्यक्तिगत सत्याग्रह की एक कहानी

१९४० की व्यक्तिगत सत्याग्रह की लड़ाई में गांधीजी सत्याग्रह के लिए एक-एक व्यक्ति की परीक्षा करके भेजते थे। व्यक्तिगत सत्याग्रही के लिए कुछ योग्यता और शर्तें तय की गयी थीं। जिसमें दूसरी योग्यता—नियमित कातना था। उस समय हम लोग नागपुर जेल में थे। मेरे पास एक भाई की शिकायत आयी कि "वे कातते नहीं, फिर भी नियमित कातनेवाले के तौर पर गांधीजी का प्रमाणपत्र ले आये हैं। गांधीजी ने उन्हें पास कैसे किया?" मैंने उनसे बुलाकर पूछा- "लोग कहते हैं कि आप कभी कातते हुए दीखते नहीं हैं तो क्या बात है?" उसपर वे भाई कहने लगे : "जो लोग शिकायत करते हैं, वे जानते ही नहीं। बिलकुल ही सीधी-सी बात है। २०-२५ वर्षों से मैं नियमित कात रहा हूँ। अब तक गांधी-जयन्ती का एक भी साल ऐसा नहीं गया है, जिस दिन मैंने नहीं काता है। यह प्रथा ३० साल से चली आयी है। हर गांधीजयन्ती के दिन मैं नियमित कातता हूँ। इसलिए मेरी गिनती नियमित कातनेवालों में होनी चाहिए। मेरा यह दावा आपको कबूल भी करना चाहिए।"

अब तो गांधीबाबा को ही पूछना चाहिए कि आपके नियमित कातने का अर्थ क्या होता है? परन्तु मैंने उनसे कहा कि अभी जेल में कुछ खास काम तो नहीं होता तो कताई के वर्ग में आप आइये। वे भाई तबसे नियमित कातनेवाले बन गये। जेल से छूटने के बाद उन्होंने नियमित कातना शुरू किया। सिर्फ गांधीजयन्ती के दिन नहीं, हमेशा। परन्तु जब पहले उन्होंने कहा था कि वे नियमित कातनेवाले हैं, तब उन्होंने बहुत प्रामाणिकता से कहा था। इस तरह बोलने में उन्होंने कुछ अयोग्य किया, ऐसा उन्हें लगता भी नहीं था। "नियमित कातनेवाला" "दैनिक कातनेवाला" इनका अर्थ उन्होंने अलग-अलग ढंग से किया। इसलिए वे हर गांधीजयन्ती के दिन नियमित कातनेवाले हो गये। जिस तरह कोई मनुष्य हर एकादशी को उपवास करे और कहे कि मेरा नियमित एकादशी व्रत चलता है।

चरखा : अहिंसा का विचार

यह कहानी मैंने इसलिए बतायी कि इस तरह जो होता है, उसमें कोई सार नहीं। मान लीजिये, गांधी-विचारवाले रोज नियमित कातते और मरने तक कातते हैं। इस तरह उन्होंने कातने की प्रथा अपने तक सीमित समझकर वह काम किया। यह मान लिया कि "मैंने यह व्रत लिया है, इसलिए मैं कातता हूँ और उसे छोड़नेवाला नहीं हूँ।" किन्तु यदि उन्हें निश्चय हो कि "खादी की बात हिन्दुस्तान में चलनेवाली नहीं है। कोई बेकार हो और मजदूरी चाहता हो तो भले ही काते।" साथ ही उन्हें यह विश्वास न हो कि "स्वावलंबन की दृष्टि से जो किसान अपने लिए अनाज खुद पैदा करता है, उसके लिए काश्त करता है, इसी तरह अपना कपड़ा भी हमें तैयार कर लेना चाहिए।" तो यह नहीं कहा जायगा कि गांधी-विचार की दृष्टि से जो करना है, वही वे करते हैं। विचार तो ऐसा करना चाहिए कि चरखा एक विचार की

चिह्न है, प्रतीक है। चरखा याने अहिंसा का विचार, अहिंसा का प्रतीक है। गांधीजी हमेशा कहते थे कि चरखा शरीर-परिश्रम के लिए उत्पादक साधन है। उसकी किसीके साथ स्पर्धा नहीं। सारांश, स्पर्धा-रहित उत्पादक शरीर-परिश्रम के चिह्न के रूप में अगर हम इसकी तरफ देखते हैं तो जितना अहिंसा का विचार समाज में फैलेगा, उतना ही चरखे का विचार भी फैलेगा। अगर समाज में अहिंसा का विचार न चलेगा तो चरखा भी नहीं चलेगा।

बहुत-से लोगों ने तो स्वराज्य-प्राप्ति के बाद चरखा कातना छोड़ दिया है। कांग्रेसवाले खुद तो खादी पहनते हैं, पर उनके घर से खादी चली गयी है। वे खुद एक नियम की निष्ठा के तौर पर खादी इस्तेमाल करते हैं। इतना ही नहीं, स्वराज्य-प्राप्ति के बाद अब खादी का क्या काम है? ऐसा भी पूछनेवाले निकल पड़े हैं। वे कहते हैं कि "स्वराज्य-प्राप्ति के बाद देश में जो मिलें हैं, वे अपने देश की ही मिलें हैं। फिर चरखे का प्रयोजन ही क्या है? बेकारी-निवारण के लिए मजदूरी मिले, यह ठीक है, किन्तु जिन्हें मजदूरी चाहिए, वे खुद कातें।"

अहिंसा चलेगी तो खादी भी चलेगी

मैं कहता था: "जहाँ अहिंसा नहीं चलेगी, वहाँ खादी भी नहीं चलेगी।" खादी चलेगी या नहीं? इसका जवाब "अहिंसा चलेगी या नहीं" इसीपर निर्भर है। अगर अहिंसा नहीं चली तो समझना चाहिए कि खादी भी चलनेवाली नहीं है। फिर भले ही मजदूरों के लिए वह चले। जब तक उन्हें दूसरी मजदूरी नहीं मिलती, तभी तक वे इसका उपयोग करेंगे। जब दूसरी मजदूरी मिल जायगी तो इसे छोड़ देंगे। बेकारी-निवारण का उपाय मानकर जो लोग खादी को चलाने की बात मानते हैं, उन्हें समझना चाहिए कि उतने अंश में तो अपने ही देश में नहीं, दूसरे किसी भी देश में वह चल सकेगी। किन्तु जिस तरह खादी की ओर बापू थे, उस तरह वह तभी चलेगी, जब हम जीवन का आधार अहिंसा को मानेंगे। नहीं तो खादी नहीं चलेगी। फिर भले ही अंबर-चरखे की योजना कीजिये या दूसरी कोई और योजना। अंबर में ऐसी कोई ताकत नहीं कि वह मिल के साथ स्पर्धा में आर्थिक तरीके से टिक सके।

तब गांधीवालों और दूसरों में फर्क ही क्या?

मुझे आश्चर्य होता है कि गांधीवाले भी सेना को अनिवार्य मानते हैं। तो फिर दुनिया में कौन-से लोग रहते हैं, जो इससे कुछ भिन्न मानते हों। पूँजीवादियों, समाजवादियों, अधिनायकतावादियों और प्राचीन राजतंत्रवादियों को भी सेना अनिवार्य लगती थी। अगर सर्वोदय-विचारवादियों को भी इसी तरह सेना की अनिवार्यता महसूस हो तो मेरी दृष्टि से सर्वोदय-विचार बिलकुल ही निकम्मा है। मैं ऐसे सर्वोदय-विचार का कोई उपयोग नहीं देखता। क्योंकि हम "सब लोग सुखी बनें" ऐसी प्रार्थना प्राचीन काल से करते आये हैं, किन्तु इस तरह सर्वोदय हुआ नहीं और न होनेवाला ही है। "सब लोग सुखी बनें, सब नीरोगी बनें, सब निरामय बनें और सर्वत्र प्रेम का अनुभव हो" इस प्रकार की प्रार्थना कौन नहीं करता? किन्तु जनता के रक्षण के लिए सर्वोदय-विचारवाले भी सेना की हस्ती अनिवार्य मानते हैं तो फिर उन्हें इस्कंदर मिर्जा ने जो सबक सिखाया, उसे भूलना नहीं चाहिए। इस तरह लोकशाही का रूपान्तर सैनिकशाही में हो सकता है, जैसे कि फ्रांस, मिश्र, पाकिस्तान और बर्मा में हुआ है। इस तरह तो जरूरत पड़ने पर लोकशाही का रूपान्तर सैनिकशाही में होने में कोई बाधा नहीं रहती। फिर सैनिकशाही लानेवाला दावा तो यही करता है कि "आज सैनिकशाही इसलिए लायी गयी है कि आगे कभी प्रजातंत्र की स्थापना हो सके।"

जनरल अयूबखाँ ने जाहिर किया है कि पूर्वी पाकिस्तान में जो लोग काला बाजार करेंगे, नफाखोरी करेंगे, दूध में पानी मिलायेंगे, उन्हें १४ साल की जेल की सजा दी जायगी। मुझे लगा कि जनरल अयूबखाँ को १४ साल की अवधि क्यों सूझी होगी? तो लगा कि उसने रामायण पढ़ी होगी। इसीलिए उसे १४ साल का बनवास आया होगा। अब दूध में पानी मिलाने का अपराध गंभीर कहा जायगा। किन्तु जो लोग १४ साल की सजा के पात्र हैं, वे उसके लायक हैं या नहीं? इसका उत्तर तो अयूबखाँ के सिवा कोई नहीं दे सकेगा।

आज सभी शाही जनहित की ताबेदार

कोई भी शाही प्रजा को सुख देने और कल्याणराज्य की ही बात करती है, दूसरी कोई बात नहीं करती। उड़ीसा में "गणतंत्र-परिषद्" नाम की एक संस्था है, जो चुनाव में कांग्रेस के विरुद्ध चुनी गयी है। "गणतंत्र" याने प्रजा की सेवा करनेवालों का तंत्र। उसमें हैं तो राजा-महाराजा, पर नाम है "गणतंत्र"। आज के जमाने में प्रजा के सुख का नाम लिये बगैर कोई भी शाही क्षणभर भी काम नहीं कर सकती। इसलिए सैनिकशाही, साम्यवाद, समाजवाद या सर्वोदयवाद–कोई भी वाद आये तो प्रजा के हित की ही बात करेगा। परंतु हित किस तरह आता है, इसका विचार करते हुए अगर सेना अनिवार्य मालूम पड़े तो सर्वोदय-विचार, साम्यवाद और समाजवाद में अधिक अन्तर मानने का कोई कारण नहीं।

आंतरिक शान्ति के लिए सेना की जरूरत न पड़े

इसलिए गांधीजी की जयंती को पूरा सार्थक करना है तो समाज में चरखा कैसे चले, इसका विचार नहीं करना चाहिए। किन्तु समाज में अहिंसा किस तरह चले, इसका विचार करना चाहिए। शांति-भंग करनेवाले जो-जो प्रसंग हों, उनमें पुलिस या सेना को बुलाना न पड़े और जनता अपना सिर अर्पण करने की तैयारी रखकर शांति की स्थापना करे। शांति की स्थापना के पीछे-पीछे खादी आदि भी आयेगी। अगर इस तरह शांति की शक्ति हम स्थापन कर सकें और उसके साथ चरखा चले, तभी वह चलेगा। अगर चरखे को अहिंसा की शक्ति से अलग रखकर चलाना चाहेंगे तो वह नहीं चलेगा।

आज गांधीजी की जयंती पर जो कुछ कहा है, वह गांधीजी के चरणों में समर्पण करता हूँ। इसमें से आपको जो कुछ लेने लायक लगे, वह आप ले लीजिये।

जय ग्रामदान-जयजगत्

राज्य-संचालकों को भी अवस्थाकृत अवकाश का नियम क्यों नहीं ?

[बावरा (मध्य सौराष्ट्र) में पत्रकारों ने पूज्य बाबा से ८ प्रश्न पूछे, जिनके मार्मिक उत्तर पू० बाबा ने जो दिये, वे निम्नलिखित हैं। —संपादक]

१. प्रश्न :—सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं के हल के लिए अगर अनशन का शस्त्र के तौर पर उपयोग किया जाय तो क्या आप उसे उचित मानेंगे ?

आज अनशन का ऐसा उपयोग उचित नहीं

उत्तर :—विशेष पवित्र उद्देश्य के लिए विशेष पवित्र पुरुष के अनशन से लाभ उठाया जा सकता है। किन्तु आज की लोकतांत्रिक स्थिति और विज्ञान के जमाने में सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं के लिए साधारणतः मैं अनशन को उचित नहीं मानता।

२. प्रश्नः—सुना जाता है कि शांतिसेना की योजना सफल न हुई तो आप यह विचार छोड़ देंगे। क्या यह सच है ?

शांतिसेना योजना सफल होकर रहेगी

उत्तरः—अभी यह योजना सफल होगी या नहीं, इसका अन्दाजा लगाने का कोई साधन नहीं। फिर भी वह सफल ही होगी, क्योंकि या तो वह सफल होगी या हमारा जीवन ही समाप्त हो जायगा। जबतक यह सफल न होगी, तबतक इस सम्बन्ध का यत्न हम कभी न त्यागेंगे। सच तो यह है कि हमने कभी ऐसा कहा ही नहीं। यही कहा था कि यदि हमें शान्तिसेना के काम में सफलता न मिली तो हम सभी तरह के सार्वजनिक काम करने की योग्यता खो बैठेंगे।

३. प्रश्नः—परिवार-नियोजन और सन्तति-नियमन के विषय में आपका क्या मत है ? और आज सरकार उसे जो प्रोत्साहन दे रही है, उस बारे में आप क्या सोचते थे ?

कृत्रिम परिवार-नियोजन खतरनाक

उत्तरः—इस बारे में मैं कई बार अपने विचार प्रकट कर चुका हूँ। मैं मानता हूँ कि यदि परिवार-नियोजन और सन्तति-नियमन कृत्रिम साधनों से होता हो तो वह दुनिया के लिए अत्यन्त हानिकारक है। यह प्रश्न कोई स्थूल प्रश्न नहीं। इसमें आध्यात्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और मानव-विकास के बहुत-से प्रश्न आ जाते हैं। ऐसे प्रश्न पर छिछले विचार से काम नहीं चल सकता। इसमें तो अधिक से अधिक गहराई में, तह में उतरकर विचार करना चाहिए। इसलिए आज सरकारी स्तर पर इस दिशा में जो प्रयत्न चल रहे हैं, वे मुझे हानिकारक मालूम पड़ते हैं।

४. प्रश्नः—कई जगहों से सुना गया है कि भूदान में मिली जमीन का जल्दी वितरण नहीं होता। इसलिए इस प्राप्त जमीन का वितरण एवं जोत में जल्दी लाने के लिए आपकी क्या योजना है ?

जमीन के जल्दी वितरण की चिन्ता नहीं

उत्तरः—इसके बारे में मुझे अधिक उतावली नहीं है। कारण जो जमीन मिली है, सारी वितरित हो जायगी। बहुत-से प्रदेशों में आधे से अधिक जमीन वितरित हो चुकी है। जितनी बाँटी गयी है, उतनी ही बाँटने लायक थी। हाँ, बिहार में काफी जमीन मिली और उस परिमाण में उसका वितरण कम अवश्य हुआ है। कारण सरकार के पास जमीन का लेखा-जोखा (रेकार्ड) नहीं होता और हर जमीन का लेखा-जोखा करवाने में बहुत देर लग जाती है। फिर भी कार्यकर्ता काम कर ही रहे हैं। इसलिए वहाँ थोड़ी देर अवश्य लगेगी। फिर भी हमें उसकी कोई चिन्ता नहीं। इसलिए कि जिन गाँवों में भूदान मिला हो, उन गाँवों को यदि ग्रामदान में परिवर्तित किया जा सके तो वह भी करने के लिए हमारा प्रयत्न चल रहा है। फिर तो ग्रामसभा की मार्फत सरलता से जमीन का वितरण हो जायगा।

५. प्रश्न :—सुना जाता है कि भावनगर में आपने कांग्रेस और राजनीति के बारे में जो विचार व्यक्त किये, उनसे कांग्रेस-कार्यकर्ताओं में विषाद छा गया और इसके लिए ढेबरभाई भी आपसे भेंट करने आये थे। क्या यह सच है ?

उत्तर :—मैं आजकल अखबार नहीं पढ़ता। इसलिए अखबारों में जो छपता है, उसका उत्तर देने की जिम्मेवारी मुझपर नहीं है। जो ऐसी खबरें भेजते हैं, उन्हींकी यह जिम्मेवारी है कि खबर भेजते समय हमारे लोगों को बताकर भेजें तो गलतफहमी न हो। लेकिन यदि वे ऐसा करना नहीं चाहते तो उसकी कुछ भी जिम्मेवारी हम नहीं उठा सकते।

६. प्रश्न :—पंचवर्षीय योजना के लिए विदेशी सहायता लेने के बारे में आपका क्या विचार है ?

सिर्फ विदेशी मदद पर निर्भरता भयावह

उत्तर :—यदि विदेशी सहायता बिना शर्त मिलती हो और सरकार उससे लाभ उठाना चाहती हो तो इसमें मैं कोई खास दोष नहीं देता। किन्तु इस तरह बाहरी मदद से राष्ट्र का कभी निभाव नहीं हो सकता। इसलिए मेरा मुख्य प्रयत्न यही है कि गाँव-गाँव में लोग अपने पैरों पर खड़े हों। केवल बाहरी सहायता देश को बहुत आगे नहीं ले जा सकती। ऐसी सहायता बिना शर्त हो तो भी उसमें भय तो रहता ही है। इसलिए सावधानी से व्यवहार करना चाहिए, इतना ही मैं कहूँगा।

७. प्रश्न :—राष्ट्र-रचना के लिए राजनैतिक नेतागण बाहर आयें, यह जो श्री जयप्रकाश की माँग है, उस बारे में आप क्या कहते हैं ?

विशिष्ट जनों से विशिष्ट अपील का मेरा अधिकार नहीं

उत्तर :—विशिष्ट पुरुषों को विशिष्ट प्रकार की अपील करना मेरा अधिकार नहीं। मेरा अधिकार तो इतना ही है कि मैं पूरे समाज से अपील करूँ। इसलिए मैं तो समाज से यह अवश्य कहता हूँ कि आपको विशिष्ट पदों एवं सरकारी ओहदों का मोह त्यागकर लोकशक्ति खड़ी करने के लिए जनता में आ मिलना चाहिए। इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह बात मैं सभी लोगों से कहता हूँ। विशिष्ट जन अपने कर्तव्य के प्रति स्वयं ही जागरूक होते हैं। ऐसी स्थिति में मैं उन्हें लक्ष्य कर कुछ विचार रखूँ, यह मेरे अधिकार के बाहर की बात है। फिर भी मेरा एक अभि-

प्राय है, जिसे मैं इससे पहले भी व्यक्त कर चुका हूँ कि जैसे न्यायाधीश के लिए नियम है कि अमुक अवस्था के बाद वह जज न रहे, इसी तरह मैं मानता हूँ कि अमुक अवस्था के बाद राजनैतिक पुरुषों को सरकारी पदों से पृथक हो जाना चाहिए और यदि शक्ति हो तो स्वतन्त्र सेवा करनी चाहिए। ऐसा एक नियम होना चाहिए। यदि ऐसा नियम हो तो लोगों का भी पुरुषार्थ बढ़ेगा और नये लोगों को आगे आने का मौका मिलेगा। साथ ही पुराने लोगों की सलाह भी मिलेगी। अन्यथा अन्त तक एक स्थान पर ही बने रहें और अचानक मर जायँ तो सलाह पाना कठिन हो जायगा और नये लोगों को जरा कठिनाई होगी। मुझे इसका कोई कारण ध्यान में नहीं आता कि जज जैसे परिपक्व बुद्धिवाले के लिए भी अवकाश का समय निर्धारित है तो राजनीति में पड़े लोगों को अवकाश के समय का नियम क्यों नहीं होता?

८. प्रश्न :—आप जो यह मानते हैं कि यदि कश्मीर की सरकार सेना का सहारा न लेती तो उसका अच्छा परिणाम निकलता। इस बारे में आप क्या कहना चाहते हैं?

विज्ञान-युग में सेना व्यर्थप्राय

उत्तर :—ऐसा मेरा मत नहीं। मेरा मत यह है कि हम व्यर्थ ही सेना पर खर्च करते हैं। दुनिया की परिस्थिति देखते हुए उसकी कोई जरूरत नहीं। यदि यह खर्च कम कर दिया जाय तो हिन्दुस्तान की नैतिक शक्ति बढ़ेगी, ऐसा मैं मानता हूँ। कश्मीर के प्रश्न से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं। किन्तु सेना मजबूत बनाने के लिए इतना जो खर्च हो रहा है, वह विज्ञान के युग में करीब-करीब व्यर्थ ही है, यही मैं मानता हूँ।

प्रार्थना-प्रवचन

उदेपुर (बड़ोदा) १७-१०-'५८

विचार में "जय-जगत" और आचार में "जय-ग्रामदान"

आज सार्वजनिक सभा के सिवा शिक्षकों की भी सभा रखी गयी थी। किन्तु मेरी शारीरिक अस्वस्थता के कारण बाद में दोनों कार्यक्रम एक ही सभा में करने का सोचा गया।

मैं अधिक सभाएँ नहीं चाहता

मैं ज्यादा सभाएँ नहीं चाहता, क्योंकि ७॥ साल से मेरी सतत यात्रा चल रही है और रोज कुछ न कुछ बोलना पड़ता है। हजारों व्याख्यान और उनसे भी अधिक चर्चाएँ हो चुकी हैं। इस विषय पर बहुत कुछ साहित्य बना और कुछ किताबें भी छप चुकी हैं। इसलिए इन्हीं बातों को बारबार कहना मुझे अच्छा नहीं लगता और न उससे समाज का विकास ही होता है। यही कारण है कि मैं ज्यादा सभाएँ नहीं चाहता। मेरे लिए एक ही सभा काफी है।

प्रार्थना-सभा का महत्त्व

उसमें भी मैं उस सभा को उतना महत्त्व नहीं देता, जितना सभा के अंत में होनेवाली प्रार्थना को देता हूँ। मुझे उससे जो बल मिलता है, वह और किसी चीज से नहीं मिलता। इसलिए अपनी सभा को मैं "प्रार्थना-सभा" नाम देता हूँ। यह प्रार्थना व्याख्यान के अंत में मौन रूप में की जाती है। आज भी वह होगी। यही महत्त्व की चीज है, ऐसा मेरा मन मानना है और मैं चाहता हूँ कि आप भी ऐसा मानें। इस सभा में नागरिक, शिक्षक और विद्यार्थी बैठे हैं। मैं आपके सामने अपने हृदय की कुछ बातें रखूँगा, जो नयी-नयी सूझती हैं। उनमें आपको जो अच्छी लगे, उसपर चिन्तन और अमल कीजिये।

छानबीन की क्रिया सतत चलती रहे

कोई भी व्यापारी पुरानी पूँजी पर आधार रखे तो उससे उसका व्यापार नहीं बढ़ेगा। कोई भी देश पुरानी पूँजी पर आधार रखेगा तो वह भी आगे नहीं बढ़ेगा। कोई भी व्यापारी पुरानी पद्धति का तिरस्कार और अनादर करेगा तो उसका व्यापार नहीं चलेगा। इसी तरह कोई भी देश पुरानी संस्कृति के मूल्यों का अपमान करेगा तो उसकी प्रगति नहीं होगी। इसलिए पुराने जमाने से जो अनुभव मिले हैं, उनका अच्छा अंश अच्छी तरह संग्रह करके रखा जाय और नया सद्अंश बढ़ाया जाय। इस तरह सतत छान-बीन की क्रिया चलनी चाहिए। पुरानी चीजों का अच्छा अंश पकड़ रखना चाहिए और जो नया-नया विचार अच्छे लोगों को, मानव जाति को सूझे, उस सबका स्वीकार करने के लिए हृदय हमेशा खुला रखना चाहिए। नागरिकों और शिक्षकों पर इसकी विशेष जिम्मेवारी आती है। खास कर हिन्दुस्तान में। यहाँ गाँवों में अभी अधिक विद्या पहुँच नहीं पायी है। गाँव के लोग विश्व की परिस्थिति से परिचित नहीं रहते और न हम उन्हें उससे परिचित कराने के लिए समर्थ हुए हैं। यह एक नगरस्थान है, इसलिए यहाँ रहनेवाले शिक्षक, विद्यार्थी और नागरिकों पर इसकी विशेष जिम्मेवारी है।

विज्ञान और आत्मज्ञान का मेल करना होगा

नया युग बड़े वेग से आ रहा है। उसकी गति किसी भी पुराने युग की गति से मेल नहीं खा सकती। ऐसी स्थिति में अगर हम उसका ग्रहण करने योग्य चित्त न रखें और २०-२५ साल पहले की चीजें पकड़ रखें तो पिछड़ जायँगे। हमारा जीवन बिलकुल बिखर जायगा। इसलिए आनेवाले विज्ञान-युग का पूरी तरह विचार करना चाहिए। विज्ञानयुग के साथ कुछ लोग यंत्रयुग को जोड़ देते हैं, लेकिन वह अत्यन्त अवैज्ञानिक है। विज्ञान एक मुक्त शक्ति है। उसे आप केन्द्रित या विकेन्द्रित करनेवाले अथवा संहारक या उत्पादक-जैसा भी यंत्र बनाने को कहेंगे, वह कर देगा। इसलिए उसका यंत्रयुग से अनिवार्य संबंध नहीं है। जैसे आत्मज्ञान एक शक्ति है, वैसे ही विज्ञान भी एक शक्ति है। आत्मज्ञान यह अंतर की शक्ति है तो विज्ञान बाह्य सृष्टि की बड़ी शक्ति है। हरएक देश को अपनी-अपनी परिस्थिति और समय को देखकर विज्ञान का उपयोग करना होगा। पर उसका उपयोग किये बिना नहीं चलेगा। इसलिए हमें विचार करना चाहिए कि इतने बड़े भारत देश को हमने एक इकाई के तौर पर मान लिया है तो हमपर बहुत बड़ी जिम्मेवारी आ जाती है। उसे पूरा करने के लिए हमें विज्ञान और आत्मज्ञान का मेल साधना होगा।

समाज रचना विकेन्द्रित हो

हिन्दुस्तान की जो विविधता, विपुलता और वैचित्र्य; सब

कुछ उसका ऐश्वर्य या माधुर्य हो सकता है, यदि हम उनका वैज्ञानिक तरीके से उपयोग करें। यदि हम विज्ञान का ठीक उपयोग न करें तो इसी वैचित्र्य और वैविध्य से विरोध और अमंगल भी हो सकेगा। यह कलहोत्पादक और संहारक बन जायगा। हम अपने देश में समाज की रचना कैसे करें? हमें यह निर्णय करना चाहिए कि अपने देश के लिए विकेन्द्रित रचना करनी है या केन्द्रित। अगर हम केन्द्रित समाज-रचना की ओर झुकें तो हिन्दुस्तान में किसी भी जाति, धर्म या भाषा का समाधान न कर सकेंगे। इसमें कभी तमिलनाड को असंतोष होगा तो कभी महाराष्ट्र को, कभी गुजरात को तो कभी बंगाल को। सबको लगेगा कि हम रे साथ समान व्यवहार नहीं किया जाता। कहीं न कहीं पक्षपात हो जाता है। इसलिए केन्द्रित रचना भारत के लिए असंभव चीज है। यहाँकी १४-१४ विकसित भाषाओं और जनसंख्या को देखते हुए यहाँ समाज-रचना विकेन्द्रित ही करनी होगी।

एक-एक समाज समर्थों का समूह बने

यह विकेन्द्रित समाज-रचना का विचार आगे चलकर सारी दुनिया को लागू होगा। फिलहाल दुनिया का विचार छोड़ दें, अपने देश की बात लें तो यहाँ विकेन्द्रित समाज-रचना होकर वह समर्थ भी होनी चाहिए। हरएक प्रान्त ही नहीं, एक-एक स्थायी समाज का समूह समर्थों का समुदाय बनना चाहिए। असमर्थों, अक्षमों का सहकार भारत के लिए उचित योजना नहीं। लेकिन आज तो गाँव-गाँव के लोग लगभग अंधे जैसे हैं और शहरवाले लंगड़े। इसी न्याय के अनुसार समाज चलता है। किन्तु इस विज्ञानयुग में अंधा और लंगड़ा दोनों खड्डे में गिर जायँगे। विज्ञान-युग में अक्षमों का सहकार नहीं चल सकता। सक्षमों, समर्थों का हो सहकार होना चाहिए। गाँववालों के पैरों की तरह उनकी बुद्धि भी मजबूत, परिपक्व होनी चाहिए। इसी तरह शहरवालों में ज्ञान की तरह कर्मशक्ति भी विकसित होनी चाहिए। इसके बाद वे एक-दूसरे का सहकार करें, सहयोग करें। इस तरह से हम गाँवों को अपने पैरों पर खड़े कर सकें, वे अपनी बुद्धि से चलें तो भारत सुखी होगा। यह चीज अभी हमारी योजना करनेवालों के ध्यान में पूरी तरह नहीं आयी है। इसके लिए मैं उनको दोष नहीं देता, क्योंकि स्वराज्य-प्राप्ति के समय उन्होंने परकीयों से केन्द्रित सत्ता ही अपने हाथ में ली। फिर भी इसे दस साल हो गये। विज्ञानयुग के दस साल याने बहुत कम समय नहीं कहा जायगा। यदि स्वातंत्र्य के बाद भी लोगों का समाधान न होगा तो थोड़े ही समय में स्वातंत्र्य की रुचि फीकी पड़ जायगी, कम हो जायगी।

विज्ञानयुग में संकुचित स्वातंत्र्य चल नहीं सकता

विज्ञान के जमाने में स्वातंत्र्य का स्वतंत्र मूल्य नहीं है। यह एक नयी ही बात है। स्वातंत्र्य की कीमत भी दूसरे अनेक विचारों पर आधार रखती है। मान लें कि स्वातंत्र्य की स्वतंत्र कीमत है और मैं गुजरात की तरफ से माँग करूँ कि तुम्हारा गुजरात एक स्वतंत्र राष्ट्र होना चाहिए तो इसपर क्या आक्षेप होगा? इसका विरोध भी क्यों? अगर स्वातंत्र्य का स्वतंत्र मूल्य हो तो जो कोई स्वतंत्र होना चाहे, उसे इजाजत मिलनी चाहिए। परंतु आज हम विचार ही नहीं कर सकते कि गुजरात एक स्वतंत्र राष्ट्र होगा। यह स्वयंसिद्ध बात है कि विज्ञान के जमाने में दुनिया नजदीक आ रही है, छोटी हो रही है। इसलिए यदि छोटे-छोटे राष्ट्र, छोटे-छोटे प्रान्त स्वतंत्र होने की बात करते हैं तो दूसरी बहुत-सी चीजों का संकोच करना होगा, किन्तु स्वातंत्र्य का संकोच नहीं होगा। स्वातंत्र्य संकोच के लिए नहीं, विकास के लिए है। स्वातंत्र्य के मूल्य की कसौटी यही है कि स्वातंत्र्य से विकास हो रहा है या संकोच? संकोच होता हो तो उस स्वातंत्र्य की कीमत नहीं है। स्वातंत्र्य से विकास होता हो, तभी उसकी कीमत है। साधारणतः स्वातंत्र्य में विकास अवश्य अधिक होता है और उसे अवकाश भी अधिक मिलता है।

स्वातंत्र्य का मूल्य सर्वमान्य है, किन्तु वह साधारण रीति से साधारण जमाने में ही, विशेष रीति से विशेष जमाने में नहीं। आप जानते हैं कि भरतखंड को "पुण्य-भूमि" माना गया है। "भारत-खण्ड भूतलमा जन्मी" इस तरह हमारा कवि गाता है। "भरतखंड सौराष्ट्रमा जन्मी, हालर मा जन्मी या सोरठ मा जन्मी" ऐसा नहीं गाता। इतना ही नहीं, उसे यह लगा कि अगर भारत कहूँगा तो संकोच होगा। इसलिए उसने "भरतखण्ड भूतल मा जन्मी" ऐसा कहा। याने सारा भूतल अपना ही माना। तुकाराम से पूछा गया कि "क्यों भाई, तुम्हारा देश कौनसा है?" तो उसने जवाब क्या दिया? "अमुचा स्वदेश। भुवनत्रया मध्ये वास" तुकाराम ने ज्यादा यात्रा भी नहीं की थी। नासिक, पंढरपुर, पूना इतना ही उसकी यात्रा का विस्तार था। न मराठी के सिवा दूसरी कोई भाषा ही उसे आती थी। तो भी जवाब मिला कि "भुवनत्रयामध्ये वास"। यह विज्ञान-युग से पहले जमाने की ही बात है। अतः आज के विज्ञान के जमाने में अगर हम संकुचित स्वातंत्र्य की बात करें तो "संकुचित" शब्द ही स्वातंत्र्य को काट देगा।

आज स्वातंत्र्य से विकास का मूल्य अधिक

मैं कहना चाहता था कि विज्ञानयुग में छोटा-सा क्षेत्र पूरा नहीं मालूम होता है। जिसमें संकोच होता हो, संकोच की भाषा जहाँ-जहाँ हो, वहाँ स्वातंत्र्य की कीमत नहीं है। इसलिए विज्ञान के जमाने में स्वातंत्र्य की दूसरी कसौटी करनी पड़ेगी। किसी जमाने में हम स्वातंत्र्य को सर्वश्रेष्ठ मूल्य मानते थे। लेकिन आज उससे भी श्रेष्ठ मूल्य ध्यान में आ रहा है और वह है विकास। विकास के लिए जितना स्वातंत्र्य चाहिए, उतने ही स्वातंत्र्य की कीमत है। विकास के लिए जितने नियम की जरूरत है, उतनी ही नियम की कीमत है। विकास के लिए जितनी संयम की जरूरत है, उतनी ही संयम की कीमत है। नहीं तो गालियाँ बकने, शराब पीने, अखबारों में मनमाना और अश्लील साहित्य लिखने का स्वातंत्र्य जो आज चलता है, सर्वथा गलत है।

"जय जगत" का नारा क्यों?

भारत जैसे विशाल देश में अनेक भाषा, अनेक धर्म, अनेक जातियाँ, अनेक पंथ विज्ञानयुग में एकत्र रहते हैं। यह बात ध्यान में रखने की है। भारत की विविधता का खयाल करें और उसके साथ ही विज्ञान-युग के कारण दुनिया की परिस्थिति जो बदल गयी है, उसका भी खयाल रखें। आज दुनिया के किसी भी कोने में 'खट' आवाज होते ही एकदम अखबारों में उसकी खबर आ जाती है, छोटे-छोटे बच्चे भी जान जाते हैं कि अमेरिका के कोने में क्या हो रहा है। ५०० साल पहले अमेरिका के किस कोने में क्या हो रहा है, यह किसीको भी पता नहीं था। कहीं बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ होतीं तो दूसरे प्रान्तवालों को उनका कुछ भी पता नहीं चलता था। किन्तु आज ऐसी स्थिति नहीं है। आज सारा मानव-शरीर पहले से अधिक संवेदनाशील हुआ है। उसकी पहले से संवेदन-क्षमता बढ़ गयी है। अतएव हमें स्वराज्य का व्यापक

अर्थ करना होगा, संकुचित नहीं। इसलिए मैंने 'जय जगत' कहा है।

गाँव और विश्व का सीधा सम्बन्ध हो

दूसरी बात यह है कि एक बाजू से विचार और चिन्तन करने के लिए किसी भी प्रकार का संकोच या बंधन नहीं होना चाहिए। साथ ही विशाल मानव समाज की दृष्टि से ही विचार करना और बरतना चाहिए। इसी तरह एक ओर छोटा-सा गाँव और दूसरी ओर सारा विश्व। इनके बीच किसी भी तरह का परदा, मर्यादा या भूमिका नहीं होनी चाहिए। गाँव और विश्व के बीच जिला कलेक्टर, प्रान्तवाला या देशवाला कोई नहीं रहेगा। यह मेरा चित्र है। आगे की दुनिया का चित्र ऐसा ही बनेगा और उसकी तरफ आज दुनिया जा रही है। ऐसा युग बहुत जोरों से आ रहा है। आज नहीं है, पर कल अवश्य आयेगा! आज और कल के बीच २४ घण्टे का भी अन्तर हो सकता है या दो घंटे का, यह मैं निश्चित नहीं कह सकता। आज जब कुत्ता भी ५०० मील ऊपर जा सकता है तो मानव-बुद्धि का कितना व्यापक विस्तार हो गया है, यह आप समझ सकते हैं।

भक्तिमार्ग में मार्फतबाजी नहीं चलती

इस स्थिति में जो भक्तिमार्ग में हुआ, वही उस तरह का होगा। भक्तिमार्ग का अर्थ है; मैं और मेरे परमेश्वर के बीच कोई भी न हो। कोई ग्रंथ, गुरु, मंत्र, तंत्र, जंत्र, पंथ या कोई किताब न हो।

आज तो इन सबकी ओर से ईश्वर के साथ संबंध रखा जाता है। पति स्त्री से कहता है कि "तुम्हारा कोई स्वतंत्र भगवान नहीं, मैं ही तुम्हारा परमेश्वर हूँ। मेरी मार्फत तुम परमेश्वर के पास पहुँचोगी।" अवश्य ही आज की स्त्रियाँ इस उत्तर पर पुरुष के सामने खड़ी होकर उनसे पूछती हैं कि "तो फिर आप ही मेरी मार्फत परमेश्वर के पास क्यों नहीं जाते?" लेकिन एक जमाने में ऐसा था कि धर्मकार्य के लिए पुरुष ही बैठता और वही मंत्र बोलता था। संकल्प पुरुष करता और पानी भी वही छोड़ता। उसकी पत्नी का उसके हाथ से हाथ लगा देना काफी था। मानो इन्जन के साथ मालगाड़ी का डब्बा जुड़ गया। इन्जन जहाँ-जहाँ जायगा, वहाँ-वहाँ उसके पीछे-पीछे मालगाड़ी के डब्बे जायँगे। इन्जन के पीछे डब्बे सुरक्षित हैं, ऐसा आज तक माना गया है। वसिष्ठ-अरुंधती न्याय इसका बहुत ही अच्छा उदाहरण है। वसिष्ठ जब ध्यानमग्न रहते तो अरुंधती उसकी छाया की तरह साथ रहती। जिस तरह रघुवंश में राजा दिलीप नन्दिनी गाय का अनुकरण करता है, उसी तरह अरुंधती भी दिनरात अपने पति का अनुकरण करती थी। वसिष्ठ मुनि चौबीसों घंटे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते थे। किन्तु ऐसे कुछ एकांगी धर्मविचार आज के विज्ञान-युग में नहीं चलेंगे। अब वसिष्ठ योगी बन सकता है तो अरुंधती भी योगिनी बन सकती है। दोनों योगी, दोनों स्वबुद्धित्तम होने चाहिए, तभी एक-दूसरे का सहकार हो सकता है। पति की तरह पत्नी को और सभीको मोक्षका अधिकार होना चाहिए। इस तरह से दोनों "परस्परं बोधयंतः" दोनों मिलकर ईश्वर के पास जायँ।

भक्तिमार्ग में सहयोग या सहकार योग्य है। किन्तु अमुक की मार्फत ईश्वर के पास पहुँचा जाय, यह गलत है। बीच में कोई मार्फत नहीं चलेगी। इस तरह जैसे भक्तिमार्ग में भक्त और परमेश्वर के बीच कोई भी परदा न होने की कल्पना विकसित हुई, वैसे ही गाँव और विश्व के बीच किसी भी प्रकार का परदा नहीं रहना चाहिए। जिला, प्रान्त और राष्ट्र—किसीका भी परदा न रहे। जब गाँव, छोटा-सा समुदाय अपने में ही स्वयंपूर्ण होगा, तभी सारे विश्व के साथ उसका अनुसंधान रहेगा। इसलिए मैं विचार से "जयजगत" और आचरण से "जय ग्रामदान" कहता हूँ।

एक भाई का प्रश्न

आज एक भाई मुझसे कहते थे कि आपका यह काम सारी दुनिया को शान्ति की राह दिखानेवाला है। दुनिया को शान्ति की जरूरत है। हिन्दुस्तान की अपेक्षा दूसरे देशों में आपकी ज्यादा जरूरत है तो क्या आप दूसरे देश में जायँगे? मैंने कहा, दूसरे देश में तो नहीं, परन्तु कम से कम अपने देश में यह काम होगा तो दूसरे देशों में जाने की जरूरत ही न होगी। फिर जाना ही ही होगा तो भी जाने में कोई आपत्ति नहीं। इसलिए मैं केवल "जय-जगत" नहीं कहता हूँ। साथ-साथ "जय-ग्रामदान" भी कहता हूँ, यह आपको समझना चाहिए।

गाँव और विश्व के सीधे सम्बन्ध से लाभ

गाँव और विश्व का सीधा सम्बन्ध होगा तो फिर पण्डित नेहरू के बाद क्या होगा, ऐसा निकम्मा, निरर्थक और निष्प्राण सवाल नहीं पूछा जायगा। भारत जैसे देश को यह सवाल शोभा नहीं देता है। यह सवाल इसीलिए खड़ा होता है कि विचार करने की शक्ति हमने प्राप्त नहीं की है। हमने तो विचार करने का स्वतन्त्र खाता खोल दिया है। विचार करने का जिम्मा हमने मन्त्रियों पर डाल दिया है। मन्त्री कहते हैं कि हमें तो विचार करने के लिए समय ही नहीं मिलता। बेचारे सारे दिन फाइलों में, कागजपत्रों में फँसे रहते हैं।

नाहक के रेकार्ड, पत्र-व्यवहार इन सबकी जरूरत इसीलिए होती है कि हमने विकेन्द्रित योजना नहीं की। मान लीजिये, परमेश्वर ने हमें चार कान और आपको चार आँखें दीं तथा हम दोनों सहकार करें तो आपको मेरे कानों से सुनना होगा और मुझे आपकी आँखों से देखना होगा। दोनों का कुल मिलाकर जो परिणाम आयेगा, उससे क्या काम बनेगा? इसलिए भगवान ने जैसे हरएक को हरएक इंद्रियाँ देकर कहा कि तुम सहकार करो, वैसे ही छोटी-छोटी दो हजार की इकाई मान लीजिये, जिनमें हरएक को हाथ, नाक, कान, पाँव दिये हों। फिर ऐसी इकाई बनने के बाद परस्पर सहकार के लिए कहा जाय तो वे अच्छी तरह कर सकेंगे। अभी तो प्रान्त-रचना, राष्ट्र-रचना रहेगी, परन्तु यह सारी रचना आनेवाले जमाने में टूट जायगी और ग्राम और विश्व का सीधा सम्बन्ध होगा, बीच में और कोई न रहेगा।

केन्द्रित योजना का अभिशाप

मेरे प्रिय मित्रो, आपको यह विचार जरा कठिन मालूम हुआ होगा, किन्तु यहाँ नागरिकों के साथ शिक्षक और विद्यार्थी भी हैं, ऐसा मुझे कहा गया है। इसलिए कठिन मालूम होने पर भी इसे हम टाल नहीं सकते। यदि हम इसे टाल देंगे और छोटी-छोटी बातों में आसक्ति रखेंगे और छोटी-छोटी योजना में खुद को बाँध लेंगे तो यह विचार आगे नहीं बढ़ेगा और हम भी नहीं टिकेंगे। इसलिए विचार करना चाहिए। यदि हम विकेन्द्रित, स्वयंपूर्ण और साथ ही विश्वसहकारी रचना करेंगे तो आज जो केन्द्र को इतनी सारी सत्ता सौंपी है, वह न सौंपनी होगी। फिर गांधीजी के जमाने की ५२ लाख भिखारियों के प्रश्न की तरह

आज की ५५ लाख नौकरों की समस्या भी नहीं चलेगी। तत्कालीन भिखारी वर्ग उत्पादक श्रम नहीं करता था, वैसा ही आज का यह ५५ लाख नौकरों का अनुत्पादक वर्ग है। वह सर्वथा निरुपयोगी हैं, ऐसा मैं नहीं कहता। फिर भी साक्षात उत्पादन के काम में भाग न लेनेवाला इतना बड़ा अनुत्पादक वर्ग अगर समाज के सिर चढ़कर बैठे तो हिन्दुस्तान में बहुत भयानक समुदाय उत्पन्न होगा। वे नौकरी की माँग करेंगे तो सारे भारत की पंचवर्षीय योजना में बताया जायगा कि अगले ५ वर्षों में हम इतने-इतने काम देंगे, इतने-इतने स्कूल शुरू करेंगे, जिससे १ लाख ५५ हजार शिक्षकों को काम मिलेगा, उनकी बेकारी कम होगी। फिर वे शिक्षक भी अनुत्पादकों को पैदा करनेवाला ही शिक्षक अपने विद्यार्थियों को देंगे। इस तरह सारी योजना में शिक्षक, इंजिनियर, विकास-योजना, खादी-कमीशन सारी चीजों को नौकरी के साधन के तरीके से देखने और सबका समाधान करने की कोशिश करते रहने से आज सात करोड़ में ५५ लाख नौकर हो गये हैं। याने लगभग ५५ लाख परिवार अनुत्पादक ऊँची श्रेणी में बैठ गये हैं। कल यह संख्या एक करोड़ भी हो सकती है। इस तरह होता है तो योजना विकसित मानी जाती है। लेकिन यदि सात करोड़ में एक करोड़ अनुत्पादक और ऊँची श्रेणी में दाखिल हो जायँ तो क्या राष्ट्र में श्रम की प्रतिष्ठा रहेगी ?

यह सारा इसलिए होता है कि आज सारी योजना केन्द्रित की गयी है। यह एक भयानक चीज है। अपने देश का सैनिक खर्च भयानक है, वैसा और उतना ही भयानक यह खर्च है। यह उससे जरा भी कम भयानक नहीं। अवश्य ही इससे कुछ लोगों को संतोष मिलता है, किन्तु ऐसी स्थिति में चंद लोगों को काम देकर संतोष होगा तो भी कुल मिलाकर देश में अत्यन्त असंतोष ही निर्माण होगा। फिर हिन्दुस्तान जैसा विशाल देश न आगे बढ़ेगा और न टिकेगा।

मालकियत नकद और उद्योग उधार

वेद में ऋषि गाता है कि भाइयो, आप हमारे शरीर को भले ही देखा करें, किन्तु हम तो मौन वातावरण, चिन्तन के वातावरण में हैं उन्मन या मननरूप अवस्था में शरीर रहता ही नहीं—

"उन्मदिता मौनेयेनु, वाताया तस्थिमा वयम्।
शरीरे दस्माकं यूयं, मर्तासो अभि पश्यथ॥"

इसी तरह आप तो हमारा शरीर ही देखा करो, परन्तु जब मैं अपने शरीर की ओर देखता हूँ तो यह छोटा-सा तुच्छ, निर्बल, रद्दी शरीर इतना काम कैसे करता है, इसीका मुझे आश्चर्य होता है। जब मैं भूदान का काम करता था तो हमेशा यह आक्षेप होता था कि "इसमें जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े होंगे, "अनइकोनामिक होल्डिंग" होगा।" उसपर मैं जवाब देता था कि "मेरा होल्डिंग तो ९० पौंड का है।" उस समय भी मेरा वजन ९० पौंड था और आज भी उतना ही है। तो इतना छोटा-सा होल्डिंग, छोटी-सी मालकियत होते हुए भी यह शरीर इतना ज्यादा काम देता है, यह आप देखते ही हैं। अपना सारा देश ही "अनइकोनॉमिक होल्डिंग" है। अगर उनसे पूछा जाता है कि इसमें जो थोड़े लोग ज्यादा "इकोनॉमिक" और बाकी "अन्इकोनॉमिक" हैं, उन्हें वे उद्योग नहीं देंगे न ? तो कहते हैं, "हाँ देंगे।" लेकिन यह मजे की बात है कि लोगों के हाथ में मालकियत तो नगद देंगे और धन्धे रहेंगे उधार इस तरह चल नहीं सकता। मैं चाहता था कि मेरा यह छोटा-सा होल्डिंग है तो भी खूब काम देता है, उसी तरह से जमीन के छोटे टुकड़े भी खूब काम देंगे। ●●●

कार्यकर्ताओं के साथ चर्चा २२-९-'५८

कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन

[महाराष्ट्र यात्रा की समाप्ति के समय रास्ते में कार्यकर्ताओं से चर्चा के बीच पूज्य बाबा ने आज की स्थिति के अनुरूप उनका जो मार्ग-दर्शन किया, वह निम्नलिखित है। सं०]

शक्ति का मूलस्रोत अव्यक्त

जिसे हम "शक्ति" कहते हैं, वह व्यक्त में नहीं होती। अव्यक्त में रहती है। भौतिक सृष्टि व्यक्त रहती है। उसे "अधिभूत" कहते हैं। आगे उसीसे जीव निर्माण होते हैं। उन्हें "अधिदेव" कहा जाता है। उन्हींमें से कोई जीव तड़पन भरा साधक होता है। उसे "अधियज्ञ" कहते हैं। दुनिया में ये तीन प्रकार दिखाई पड़ते हैं। ये तीनों ही व्यक्त हैं। मूलभूत परमात्मा निर्गुण है। वहाँ गुण भी नहीं, आकार भी नहीं और न कर्म ही है। फिर वही सगुण हुआ। याने उसके गुण प्रकट हुए। फिर भी अब तक उसे आकार प्राप्त नहीं रहता। फिर कर्म आता है। कर्म एक अव्यक्त शक्ति है। वह सृष्टि में काम करती है। वहाँ भी आकार नहीं। उस कर्म से आगे सृष्टि और फिर अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ—यह प्रक्रिया है। शक्ति का स्रोत इन सब व्यक्तों से परे अव्यक्त में है।

पंढरपुर घटना से शक्ति का प्राकट्य

हमारी महाराष्ट्र-यात्रा अब समाप्त हो रही है। मन सोचने लगता है कि इस यात्रा में क्या कहीं शक्ति निर्माण हुई है ? वैसे देखें तो, अनेक प्रकार के काम हुए। उनमें प्राप्ति का हिसाब लगाकर हम भले ही समाधान या असमाधान मान लें, लेकिन व्यक्त के क्षेत्र में शक्ति का पता नहीं लगता। वह तो अव्यक्त क्षेत्र में ही लगता है। मुझे लगता है कि पंढरपुर में जो मन्दिर-प्रवेश हुआ, कार्यकर्ताओं को इस शक्ति का भान हो, उसके पीछे और बाद एक शक्ति निर्माण हुई।

आज सारी जनता भक्तिभाव से भरी है, पर है जड़ ही। लेकिन अगर हमारे कार्यकर्ताओं को इस शक्ति का भान हो जाय तो उसका वह भक्तिभाव चेतनरूप धारण कर लेगा। इसके लिए हममें ग्रहण-शक्ति होनी चाहिए। यह काम बाह्य हेतुओं से सध नहीं सकता। याने हमें यह भाव होना चाहिए कि हममें एक शक्ति का संचार हो गया है। अगर ऐसा भास होता है और फिर हम जनता के बीच पहुँचते हैं तो हमें उस शक्ति का पूरा लाभ मिलेगा। पंढरपुर के बाद मैंने यह बात सभी कार्यक्रमों में देखी, तीर्थस्थानों में देखी और गैर तीर्थस्थानों में देखी। अब हमें ही यह समझ लेना चाहिए कि इस शक्ति का लाभ कैसे उठायें और साधारण जनता में इस शक्ति को कैसे भर दें।

महाराष्ट्र के मौलिक साहित्य का नित्य अध्ययन करें

परसों अकोला राष्ट्रीय विद्यालय के एक छात्र मुझसे मिलने आये थे। उन्हें मैंने सर्वोदय-पात्र के बारे में तो बताया ही,

सिवा यह भी कहा कि "ज्ञानदेव के भजन, सन्तों का प्रसाद, एकनाथ के भजन आदि पुस्तकों का—जो कि हमारे यहाँसे प्रकाशित हैं—अपने स्कूलों में सांगोपांग अध्ययन करायें। अगर आप लोग ही इन्हें न पढ़ें तो हमारा लिखना ही व्यर्थ होगा। आपके विद्यालय विश्वविद्यालय से संबद्ध होने के कारण आपको वहाँसे निर्धारित पाठ्यक्रम ही रखना पड़ता है। लेकिन विद्यालय के साथ छात्रावास भी तो है। वहीं इन पुस्तकों का अध्ययन-अध्यापन करें। मेरा आशय यह है कि हम भूदान के कार्यकर्ता ही भूदान और सर्वोदय विषयक ग्रन्थ, अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र पढ़ते हैं तो उतने से मुझे संतोष नहीं है। इन पुस्तकों का भी अध्ययन होना चाहिए। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव से लेकर मेरे तक जो भूलभूत, आधारभूत प्रवाह बहा आ रहा है, उसमें हमें गहरे डूबना चाहिए। हरएक को उसका विद्वत्तापूर्ण अध्ययन करना संभव नहीं। हरएक को यह ग्रहण ही नहीं होगा। लेकिन हरकोई भावपूर्वक अध्ययन अवश्य करे। इसके लिए थोड़ा, प्रतिदिन आध घंटा भी शान्त समय देना चाहिए। एकान्त स्थान चुनकर क्षणभर चित्त एकाग्र कर आत्मपरीक्षणपूर्वक चिन्तन कर ऐसे साहित्य का अध्ययन करने में नित्य थोड़ा भी समय क्यों न हो, अवश्य देना चाहिए। तभी पंढरपुर के भगवान हमपर प्रसन्न होंगे और हमें पर्याप्त शक्ति प्राप्त होगी।

पंढरपुर की घटना से लाभ उठायें

पंढरपुर से मैं दो ही अपेक्षाएँ करता था। या तो लोग मुझपर ईट-पत्थर फेंकेंगे और व्याख्यान भी न सुनने देंगे। कहेंगे कि "यह धर्म डुबोनेवाला आ गया।" या प्रेम से वह विचार मान्य कर, यह समझकर कि हम लोग ज्ञानदेव का धर्म भूल गये, इस तरह अब हमें उसकी पुनः याद करायी जा रही है, हमारा स्वागत करेंगे। इन दोनों के सिवा तीसरी बात हो नहीं सकती। उस घटना की उपेक्षा तो हो ही नहीं सकती। या तो वह शिरोधार्य हो या उसका कसकर विरोध किया जाय। ये ही दो पक्ष थे। लेकिन पंढरपुर में मुझे यही अनुभव हुआ कि जिस तरह लोगों ने नामदेव, तुकाराम का अपना ही व्यक्ति मानकर अत्यन्त प्रेम से स्वीकार किया, वैसे ही उन महापुरुषों के सामने हम योग्यता में कुछ भी न होते हुए भी हमारा भी स्वागत किया। अगर महाराष्ट्र के कार्यकर्ता इससे लाभ उठा सकें और उस सन्त-साहित्य में डूबकर प्रेम से लोगों के पास पहुँचें तो निश्चय ही उन्हें दर्शन और अव्यक्त शक्ति का लाभ होगा।

आज भी भक्तिभावना जागृत

दूसरी बात यह है कि महाराष्ट्र में गत सात सौ वर्षों में जो शक्ति विकसित हुई, मैं समझता था कि अब सुप्त हो गयी होगी। लेकिन अनुभव यही हुआ कि वह आज भी सुप्त नहीं, प्रकट ही है। जो उच्च स्तर के पढ़े-लिखे लोग हैं, उनमें भी उसका प्रवेश है। कुछ स्तरों में नहीं भी है, लेकिन नीचे स्तरों में भी आज उसका अस्तित्व कायम है। बीड़ में जड़ाऊबाई नामक एक महिला सर्वोदय-पात्र का काम कर रही है। बहुत पढ़ी-लिखी नहीं। महाराष्ट्र में अब भी भावुकता जागृत है, यह बात उन जैसे उदाहरणों से स्पष्ट हो जाती है। अर्थात् जिस प्रवाह के गुप्त या सुप्त होने का मैं अनुमान लगाता था, वह उतना गुप्त नहीं है। इसलिए मुझे विश्वास हो रहा है कि जब हम सर्वोदय-पात्र का यह कार्यक्रम संपन्न करेंगे तो उसकी अभिव्यक्ति हो जायगी। लोग पूछते हैं कि "यदि किसी दिन सर्वोदय-पात्र में अनाज न डाल सकें तो क्या होगा?" इस प्रश्न के पीछे यही भावना काम कर रही है कि सर्वोदय-पात्र रखना एक धर्मकार्य है। मैं उनसे कहा करता हूँ कि "मान लीजिये, किसी दिन आप भूल जायँ तो दूसरे दिन दो मुट्ठी छोड़ दें।" उनके पूछने का भावार्थ यह रहता है कि "यदि किसी दिन अनाज छोड़ना भूल जायँ तो क्या उसके लिए कुछ प्रायश्चित्त करना होगा?" यह भूमिका जागृत भक्तिभाव की भूमिका है। लोग ऐसे ही भक्तिभाव से यहाँ यह कार्यक्रम चला रहे हैं। हम उनके इस भक्तिभाव को ले लें।

सर्वोदय-पात्र के परिमित इष्टांक से लाभ

कई बार यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि सर्वोदय-पात्र के बारे में "टारगेट" तय किया जाय या नहीं। टारगेट तय करने में दो तरह से हानि दीखती है। एक तो उससे दृष्टि बाह्य बातों की ओर जाती है और शुद्धि की ओर ध्यान कम हो जाता है। लेकिन "टारगेट" तय न किया जाय तो काम में ढिलाई आती है। और सामूहिक प्रेरणा भी नहीं रहती। किन्तु आप महाराष्ट्रवालों ने इनके बीच का रास्ता पकड़ा है। आपने अत्यांक तो तय किया है, पर उसे बहुत बड़ा नहीं रखा वस्तुतः देखा जाय तो महाराष्ट्र में साठ लाख घर हैं तो साठ लाख का इष्टांक ठीक होता। लेकिन इतना बड़ा इष्टांक सामने रखने पर उसके पूरा करने में धांधली मचती और उसमें अशुद्धि भी आ जाती और काम सफल न होने पर निराशा ही हाथ लगती। यदि अशुद्धि रहकर सफलता भी मिलती तो भी उसमें कुछ लाभ नहीं माना जा सकता। साथ ही बिलकुल इष्टांक न तय करना भी गलत है। इसलिए आपने अपनी शक्तिभर का इष्टांक तय कर उसे तय करने और न करने, दोनों का लाभ उठा लिया। आपने तीन लाख याने पाँच प्रतिशत इष्टांक सामने रखा है। चार-पाँच महीनों में अच्छे उपायों से, सर्वथा शुद्धता रखकर इसे आप पूरा कर सकते हैं। उसे आप करें तो कार्यकर्ताओं की शक्ति कई गुना बढ़ जायगी। उससे इतना ही फल न मिलेगा, बल्कि कार्यकर्ताओं की शुचिता भी बढ़ेगी।

सर्वोदय-पात्र पर जीना अत्यधिक उच्च या नीच नहीं

कुछ लोग कहते हैं कि सर्वोदय-पात्र पर जीना अत्यन्त हीन या अत्यन्त उच्च काम है। अगर हम शरीर-श्रम से कतरायेंगे तो हमपर हीनता का आक्षेप आयेगा। लेकिन हम लोग शरीर-श्रम तो करेंगे ही। उसे हम पारमार्थिक कार्य समझकर करेंगे और सर्वोदय-पात्र लोक-सम्मति के लिए रहेगा। तब हीनता का आक्षेप बचता ही नहीं। अब अत्यधिक उच्च काम के आक्षेप के बारे में देखिये। मैं विनोद से कहता हूँ कि जब आज विज्ञान के कारण कुत्ता भी स्फुट्निक में बैठकर आठ सौ मील ऊँचा जा सकता है तो क्या हम आप नहीं जा सकेंगे? यद्यपि मैं यह विनोद से कहता हूँ, फिर भी यह केवल विनोद नहीं। हमारे कार्यकर्ता पहले के भिक्षुओं जैसे ऊँचे नहीं। जिस तरह समाज के ऐहिक और पारलौकिक लाभ की दृष्टि से भिक्षु जीवन बिताते थे, उस तरह हम न रहेंगे। यद्यपि बाहर से ऐसा मालूम पड़ता हो कि भिक्षु आलसी का जीवन बिताते हैं, फिर भी उनकी अपनी दृष्टि से एक क्षण भी आलस में बिताना उचित नहीं था। कारण वे यही मानते थे कि हम लोग समाज का अन्न खाते हैं, इसलिए एक क्षण भी आलस में बिताना ठीक नहीं। इसी तरह ध्यान-योगी का जीवन स्वीकार कर समाज का अन्न खाना भी बहुत

ऊँची भूमिका है। अगर हमने उसे साधने का क्रम अपनाया होता तो वह पतन का ही क्रम होता, ऊपर उठने का नहीं। किन्तु हम लोग तो साक्षात् सेवा करेंगे। फिर भी बहुत-से लोगों के परिवार हैं ही, इसलिए उन्हें कुछ तो देना ही पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट ही है कि कार्यकर्ता परिवार अधिक बढ़ाने की वासना रखें तो यह काम हो नहीं सकता। इसलिए संयम रखकर, भगवान जितना परिवार देता है, उतने का ही वह पालन करेगा। हमारी यह उड़ान ध्यानयोगी भिक्षु जैसी ऊँची उड़ान नहीं। फिर भी ऊँची अवश्य है और उतनी ऊँची उड़ान विज्ञान-युग में डाली नहीं जा सकती।

काम कीजिये तो लाभ स्पष्ट

आप लोग सर्वोदय-पात्र का कार्य तो कीजिये। फिर आपको स्पष्ट दीख पड़ेगा कि कार्यकर्ताओं की संख्या और शुद्धि दोनों बढ़ रही है। फिर आप देखेंगे कि महाराष्ट्र के लोगों के चित्त शान्त हो गये हैं। अक्राणीमहाल में पहले लोग घबड़ाते थे। लेकिन जब उन्होंने देखा कि इन कार्यकर्ताओं में सिर्फ परोपकार की ही तड़पन है तो उनका इनपर इतना प्रेम हो गया कि हमारे कार्यकर्ताओं को मालूम पड़ा कि इनकी सेवा करनी ही चाहिए। महाराष्ट्र के लिए यह एक "चैलेंज" है। जैसे वहाँवालों ने प्रेम से हमारे कार्यकर्ताओं को खींच लिया, वैसा ही आप लोगों को सर्वत्र अनुभव होगा।

कार्यकर्ताओं को दुहरा शिक्षण दिया जाय

इसके लिए कार्यकर्ताओं के शिक्षण की समुचित व्यवस्था करनी होगी। उनकी शिक्षा दुहरी होनी चाहिए। (१) उद्योग का ज्ञान, संगीत, भजन और वैद्यक-ज्ञान, साधारण रोगों और उनपर औषधियों का ज्ञान, इसके लिए आवश्यक ग्रन्थज्ञान और शेष व्यावहारिक ज्ञान। (२) शिक्षा-व्यवस्था याने शंकराचार्य ने जैसी व्यवस्था की, वह। इसे मैं 'आध्यात्मिक शिक्षा-व्यवस्था' कहता हूँ। शांकरभाष्य पर रामानुज के काल से लेकर लोकमान्य तिलक के काल तक विचारों के आक्रमण हुए, फिर भी शांकर-भाष्य सब कुछ सहकर वैसा ही खड़ा है। वह यत्किंचित् भी खंडित नहीं हुआ। इसके दो कारण हैं—एक तो वह सत्य पर आधारित है। दूसरे उसकी अध्ययन-परंपरा अखण्ड चली आ रही है। ग्रंथ का अध्ययन-विस्तार, न्यूनता की पूर्ति आदि करते हुए वह संप्रयोग चला आ रहा है। केवल उसका अध्ययन ही नहीं चलता, बल्कि अनुभव और प्रयोग भी चलते हैं।

कामकोटि के आदर्श शंकराचार्य

तमिलनाड की यात्रा में कांची कामकोटिपीठ के शंकराचार्य मिले तो मुझे देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने शंकराचार्य की गद्दी का संन्यास कर दिया। याने जीते जी वह गद्दी छोड़ दी और उसे एक शिष्य को सौंपकर स्वयं एक झोपड़ी में रह रहे थे। मैं गया तो वे एक चटाई पर बैठे हुए थे। वहाँ परिग्रह का लेश भी न था। याने शंकराचार्य की गद्दी को भी उन्होंने परिग्रह माना। ऐसे लोग आज बारह सौ वर्षों बाद भी दीख पड़ते हैं, इसीसे पता चलता है कि उस विचार में कितनी शक्ति है।

वैसे मैं अन्य शंकराचार्यों को देखता हूँ तो उनका काफी ठठबाट दीखता है। लेकिन कामकोटि के इन शंकराचार्य जी को देख मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। वे तमिल और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने मुझसे प्रार्थना की कि "आप तमिलनाड में अवश्य घूमिये। लोग श्रद्धा से आपका कहना सुनेंगे। लोगों में आस्तिकता लाने के लिए मैंने दो पुस्तकें, एक शैवपन्थ की और दूसरी वैष्णवपन्थ की, एक साथ छपाई हैं। तमिलनाड की वे सर्वोत्तम पुस्तकें हैं। आपके द्वारा इन पुस्तकों का प्रचार हो।" सारांश, अध्ययन की इस भूख की योजना पर हम ध्यान दें।

पुराने अद्वैत से एक कदम आगे

सर्वोदय-विचार का जो आध्यात्मिक आधार है, वह अद्वैत से कम नहीं, अधिक ही है। याने इसमें अद्वैत सिर्फ ध्यान और चित्त में रखने के लिए नहीं, बल्कि जगत में भी लाने के लिए है—जगत से भेद निकाल फेंकने का यह विचार है। ऐसा काम पुराने अद्वैतियों ने उठाया नहीं था। वे सिर्फ यही कहते थे कि चित्त में अद्वैत का अनुभव कीजिये। लेकिन हम तो जाति, धर्म, पन्थ आदि सभी भेदों को तोड़नेवाले हैं। याने हम अद्वैत लोगों से भी कुछ अधिक करने का दावा करते हैं। इसलिए हमें अपने आध्यात्मिक आधार से सुपरिचित होना चाहिए। परम्परा से हमें जो संपत्ति प्राप्त है, उससे वह अधिक है। इसमें हमारा नहीं, हमारे विचारों का अधिक महत्त्व है।

एक अध्ययनकेन्द्र और बाकी शिविर चलायें

इसलिए आप लोगों को महाराष्ट्र में यह योजना करनी चाहिए कि किसी एक स्थान पर गंभीर चिन्तन, मनन और अध्ययन हो, बाकी जगह-जगह पर शिविरों की योजना करें। उसमें अध्ययन और कलात्मक ज्ञान, दुहरे शिक्षण की योजना रहेगी ही।

क्या शिक्षणयोजना सर्वोदय-पात्र पर ही हो

यह एक प्रश्न खड़ा हुआ है कि क्या शिक्षण की योजना सर्वोदय-पात्र से ही की जाय? "सर्व-सेवा-संघ" ने सिर्फ अपने लिए ही ऐसा निर्णय किया है। लेकिन मैं आप लोगों को ऐसे किसी बंधन में डालना नहीं चाहता। यदि सर्वोदय-पात्र खूब चल पड़े तो संपत्तिदान का स्रोत आपकी ओर बहता आयेगा। आज वह नहीं आता, कारण आप अड़ियल नारायण हैं। लेकिन अब आप समर्थ नारायण हो जायँ और फिर हाथ बढ़ायें तो आप जितना चाहते हैं, उससे अधिक मिलेगा। आज संपत्तिदान देते समय दाता कार्यकर्ताओं की योग्यता देखते हैं, जो ठीक ही है। लेकिन जब वे देखेंगे कि ये स्वयम् महादेव हैं, हमारे आधार पर निर्भर नहीं तो संपत्तिदान का स्रोत आपकी ओर बहता ही आयेगा। वे देखेंगे कि ये हमसे सिर्फ पैसा ही नहीं माँगते, साथ हमारी अक्ल भी माँगते हैं तो संपत्ति का स्रोत बहाने में उनको कोई संकोच न होगा। लोग कृत्रिम मूर्ति का ही सौन्दर्य देखते हैं, स्वयंभू मूर्ति का आधार-प्रकार नहीं देखते। उसके टेढ़ेमेढ़े होने पर भी उनका मस्तक श्रद्धा से बरबस नत हो ही जाता है।

परस्पर प्रेम और विश्वास बढ़े

हममें परस्पर अनुराग और विश्वास की शक्ति बढ़नी चाहिए। इससे एक-दूसरे के गुण एक-दूसरे के लिए सहायक होंगे और दोष निकाल डालने की क्रिया शुरू हो जायगी। दोष निकालना हो तो पहले उसे छिपाया जाय, भुला दिया जाय और फिर हृदय में घुसकर हलके हाथ से निकाल फेंका जाय। मुझे पूरी आशा है कि कार्यकर्ताओं में सौहार्द और विश्वास बढ़ेगा। अबतक हम लोगों ने जो काम किया, उसमें जान से जान लड़ा देने की प्रतिज्ञा कहाँ थी? किन्तु अब सर्वोदय-पात्र से जो मिलेगा उसे हम बाँट-कर खायेंगे, ऐसी हमने प्रतिज्ञा की है। इसका अर्थ यही हुआ कि सेवक पचास हों और पात्र से चालीस लोगोंभर का अन्न

मिले तो हम पचासों उसे बाँट लेंगे। दस को भूखा न रखेंगे। हममें जो आकर मिलें, उन सबसे हमारा भ्रातृमण्डल बन जायगा। हम अपने हिस्से में से उन्हें देंगे याने जान से जान लड़ा देनेवाले साथी बनेंगे। बिना यह हुए कोई भी क्रान्ति-विचार आगे बढ़ नहीं सकता। शिवाजी का काम हमारी दृष्टि से क्रान्ति का काम नहीं था, फिर भी उसे जान से जान लड़ानेवाले साथी मिले, इसीलिए उसका काम सफल हो सका। इसी तरह हम भी बनें तो हमारा काम भी अवश्य सफल होगा। ●●●

खम्भात से विदाई के अवसर पर

खंभात-डेक (खेड़ा) ७-११-'५८

देश में निष्पक्ष समाज और शान्ति-सेना अत्यावश्यक

[खंभात शहर छोड़ने के बाद भावनगर जाने के लिए पूज्य विनोबाजी डेक पर आ गये। वहाँ उनको विदा करने के लिए शहर के नागरिक आये थे। उनके सामने विनोबाजी ने यह छोटा-सा भाषण दिया। संपादक]

पश्चिम के अन्धानुकरण का कुपरिणाम

हमारे देश की सबसे ज्यादा मुसीबत यह है कि हमने राज्य-पद्धति के लिए पश्चिम का नमूना लिया है। हमारे यहाँ एक समाज-रचना थी। उसमें कुछ गुण थे तो कुछ भयानक दोष भी। वे वैसे ही कायम हैं। हमने पश्चिम से लोकशाही का नमूना उसमें किसी तरह का फर्क किये बिना स्वीकार कर लिया है। इसीलिए हिन्दुस्तान में बहुत क्लेश, बहुत मुसीबतें, बहुत आपत्तियाँ खड़ी हो गयी हैं। यह चलती रहेंगी, जबतक कि हमने जो व्यवस्था की है, उसमें सुधार न कर सकेंगे। जबतक हमें आन्तरिक विरोध टालने की युक्ति न सूझेगी, तबतक यह सारा ऐसा ही चलता रहेगा।

हम देखते हैं कि आज इंग्लैण्ड में एक ही भाषा है, दूसरी भाषा नहीं। लड़के अंग्रेजी का ही आश्रय लेते हैं। दूसरी भाषा अलंकार के तौर पर ही सीखते हैं। विज्ञान की सभी किताबें अंग्रेजी में ही लिखी गयी हैं, इसलिए अंग्रेजी भाषा सीखने पर ही विज्ञान सीख सकते हैं। प्रेम के लिए दूसरी भाषा सीखनी हो तो भले ही सीखें, पर ज्ञान के लिए अंग्रेजी ही पर्याप्त मानते हैं। हम पराधीन अवस्था में हैं। वहाँ सबकी अपनी मातृभाषा रहती है और साथ ही राष्ट्रभाषा भी चलती है। उसका भी खयाल किया जाता है।

इसके विपरीत हमारे देश में बारह-चौदह भाषाएँ बोली जाती हैं। इसलिए यहाँ जो समस्या है, वह इंग्लैण्ड में नहीं है। इंग्लैण्ड में हमारे जैसे अलग-अलग प्रान्त नहीं। स्कॉटलैण्ड अलग हो गया तो बहुत झगड़ा भी हुआ। आज वह सब खत्म हो गया और वह एक छोटा-सा राष्ट्र बन गया है। हमारा देश इंग्लैण्ड से पाँच गुना बड़ा है और लोकसंख्या में तो छह-सात गुना बड़ा है। इंग्लैण्ड में एक ही ईसाई धर्म है। किन्तु हमारे यहाँ सौभाग्य से अनेक धर्म और उनमें भी अनेक भेद हैं। इंग्लैण्ड में लोकशाही पद्धति गये चार सौ वर्षों से चलती है, इसलिए उसमें ऐसी मजबूती आ गयी है कि उसके उपयोग का प्रकार वे अच्छी तरह जानते हैं।

आज की स्थिति में स्वस्थ लोकतंत्र की आशा गलत

इंग्लैण्ड की चुनाव-सभाओं में एक ही प्लेटफार्म पर विभिन्न दलों के लोग आते और अपने मन्तव्य बताकर चले जाते हैं फिर दूसरे आते हैं। श्रोताओं में जिन्हें जिसकी बात सुननी हो, सुनते हैं और जिनको न सुननी हो, वहाँ से चले जाते हैं। वहाँ बहुत ही सरलता से यह सारा काम चलता है। हिन्दुस्तान में उसमें से कुछ भी नहीं है। यहाँ अनेक जातियाँ, अनेक पंथ, अनेक भाषाएँ और अनेक धर्म हैं। साथ ही अज्ञान, दारिद्र्य और रोग भी यहाँ भरे पड़े हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान दूसरे देश की राज्य-पद्धति को वैसी ही अपने देश में कायम रखे तो यहाँ गाँव-गाँव, घर-घर में भी झगड़ा हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। आज यह बात हमें अपने देश में बहुत जगह देखने को मिलती है। बाप कांग्रेसी होता है तो बेटा कम्युनिस्ट। एक ही घर में अलग-अलग वाद में बैठ गये हैं। नौकरी, सत्ता आदि में जोरों से स्पर्धाएँ चलती हैं और देश दरिद्र होने के कारण किसीको थोड़ा ज्यादा मिलने पर दूसरों को ईर्ष्या भी होती है। ऐसी स्थिति में यहाँ विभिन्न दल एक साथ मिलकर राज्य चलायें या एक-एक दल को सुधार सामनेवाले दल स्वीकार करें और शुद्ध स्वच्छ लोकतंत्र चले, यह मानना बहुत गलत है।

आज देश में एक तटस्थ और पक्षमुक्त समाज अत्यावश्यक

प्रश्न होता है कि आखिर ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए? स्पष्ट है कि देश में तटस्थ और पक्षमुक्त समाज होना चाहिए, जो अपने हाथ में सत्ता न ले और स्वयं सर्वथा सत्ता-निरपेक्ष होकर लोगों की सेवा करे। जिसकी जो भूल हो, उसे वह प्रकट करे, किसीपर अन्याय होने पर उसे जाहिर करे। वह स्वयं सेवा-परायण बनकर लोगों पर प्रभाव डालेगा तो सरकारी मंत्र पर भी उसका प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि उसे सरकारी तंत्र तो हाथ में लेना नहीं है। सरकारी और विरोधी दलों के बीच घर्षण होने पर उस घर्षणस्थान में तेल का काम कर सकनेवाला समाज देश में अनिवार्य है। यंत्र में तेल न होने पर वह नहीं चल पाता। इसी तरह देश में भी स्नेह की योजना अपेक्षित है। ऐसा समाज स्नेहन का काम करेगा और उससे घर्षण भी कम होगा। और ऐसे लोग दल-निरपेक्ष होकर सेवा करेंगे तो समाज पर उनका नैतिक असर भी होगा।

जब चुनाव हो तो किसी भी पक्ष के मनुष्य को अन्ध बनकर नहीं चुनना चाहिए। नालायक व्यक्ति को भी अपने पक्ष का होने के कारण ही मत दे देना ठीक नहीं। लोगों को यह समझाना होगा कि मनुष्य चाहे जिस पक्ष का हो, यह अवश्य देखा जाय कि वह अच्छा या खराब, अक्लवाला है या मूर्ख है और उसका चारित्र्य कैसा है। तभी उसे चुना जाय। अपने दल के भी उत्तम-से-उत्तम मनुष्य चुनाव में खड़े किये जायँ। यदि हम मनुष्य को परखकर अपना मत न देंगे तो हमारे स्वतंत्र मत का कोई मूल्य ही न होगा। हरएक की बुद्धि का उपयोग न हो पायेगा। पत्थर को सिंदूर लगाने पर वह भगवान बन जाता है। फिर वह मूल्यवान है या बिलकुल खराब, यह देखना नहीं पड़ता। अवश्य ही इसके पहले ऐसा होता था कि

कांग्रेस की ओर से जो खड़ा रहे, उसे मत मिलना चाहिए। पहले यह बात ठीक भी थी, क्योंकि उस समय पत्थर का उपयोग पूजा में ही होता था। किन्तु यह पत्थर अब पूजा के लिए उपयोग में नहीं आता। अब सिंदूर लगा देने से वह हनूमान नहीं हो जाता। अब तो उस पत्थर का उपयोग हमें स्वराज्य का मकान बनाने में उसकी बुनियाद के लिए करना है। इसलिए आज यह स्थिति हो गयी है कि पक्ष चाहे जो हो, उसकी तरफ से उत्तम-से-उत्तम मनुष्य ही चुनाव में खड़े होने चाहिए। फिर लोगों को भी इतना जागृत रहना चाहिए कि अपने पक्ष का होकर भी अगर खराब मनुष्य हो तो उसे मत न दें। यदि ऐसा हो और शासन में अच्छा ही मनुष्य जाय तो वहाँ सहज ही सारा काम हो सकेगा।

समाज में जब नैतिक काम करनेवाला, नीतिपरायण एक निष्पक्ष समाज होगा तो वह यह सारी बातें तटस्थ रूप से करवा सकेगा। इससे सब पक्षों के बीच में स्नेह-भाव बढ़ेगा और सरकार पर भी नैतिक दबाव पड़ेगा, जिससे सरकार भी अच्छा काम कर सकेगी। आज तो केन्द्र को इतनी सत्ता सौंप दी गयी है कि उसमें दोष आ जाना स्वाभाविक ही है।

फिर भी यह निष्पक्ष समाज चुनाव जब चलता रहेगा तो यह नहीं बतायेगा कि राज्य-तंत्र चलाने के लिए कैसे लोग होने चाहिए। शिक्षक लड़कों को सालभर सिखाता है, किन्तु परीक्षा में सब प्रश्न विद्यार्थियों को ही लिखने पड़ते हैं। शिक्षक उनमें कुछ भी मदद नहीं करता। ठीक इसी तरह यह सेवक भी पाँच साल तक लोगों को सद्विचार समझाता रहेगा और चुनाव के समय यही कहेगा कि अब आप अपना मत जिसको देना चाहें, दें। तब लोग यह समझे ही हुए होंगे कि "वसन्तसमये प्राप्ते काकः काकः, पिकः पिकः।" याने जब वसन्तऋतु आती है, तब मालूम ही हो जाता है कि कौआ कौआ ही है और कोयल कोयल ही। जनता कोयल को चुनेगी, कौवे को नहीं।

आज की शोचनीय स्थिति

अभी तक ऐसी कल्पना थी कि अच्छे मनुष्य ही वहाँ जायँ। किन्तु अब वह बात बहुत पुराने जमाने की हो गयी है। अगर कांग्रेस ऐसी बनती तो देश में बड़ी बात होती और एकदम शक्ति आ जाती। परन्तु आज तो कांग्रेस भी एक पक्षवाली बन गयी है। आज तो हरएक पेड़ पर अलग-अलग पक्षी बैठते हैं और सारे पेड़ को खराब कर देते हैं। उसकी खबर किसीको नहीं होती। फिर वे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर भी उड़ते रहते हैं। कभी-कभी इन पक्षों में भी आपस में लोगों को अलग-अलग करने का प्रयत्न चलता है। हमारे गुट में आइये तो हम आपको मिनिस्टर बना देंगे, ऐसी बातें चलती हैं। गांधीजी के जमाने के बाद नाना फडणवीस के जमाने से भिन्न राजनीति चली, ऐसा नहीं है। आज भी उसी तरह की राजनीति चलती है। इससे वातावरण भी एक-दूसरे के लिए संशयास्पद हो जाता है कि वहाँ सेवा किस तरह हो सकेगी। फिर जनता भी इतनी कमजोर हो गयी है कि अपना सब भार उसने सारी सत्ता पर सौंप दिया है। अलग-अलग पक्षवाले जनता के पास जाते हैं और एक-दूसरे को गालियाँ देते हैं। बेचारी जनता दोनों की गालियाँ सुनती है और दोनों की निन्दा करती है और खुद बिलकुल निष्क्रिय बन जाती है। ऐसी स्थिति में देश की प्रगति नहीं होगी। इस तरह तो देश धीरे-धीरे नीचे ही गिरेगा। हम अपने देश की गरीबी की हालत देखते हैं, किन्तु यह जानते हैं कि हम बिलकुल परावलंबी बन गये हैं और सरकार की मदद के बिना कुछ नहीं कर सकते हैं। हम लोगों में विश्वास ही नहीं रहा है। कुछ भी करना हो तो आरंभ सरकार से ही हो, ऐसी स्थिति हो गयी है।

कल एक भाई ने मुझसे सवाल पूछा कि यदि हमारे पक्ष के व्यक्ति के नैतिक दबाव से ग्रामदान होता है तो सामनेवाला पक्ष उसे तोड़ने का प्रयत्न करता है। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए? क्या इस तरह गाँव में पक्ष-भेद दाखिल न होगा? मुझे बिहार में इसका अनुभव होता था। वहाँ कांग्रेस और दूसरे पक्ष तो थे ही, परन्तु कांग्रेस में ही दो पक्ष हो गये थे। कांग्रेस ने प्रस्ताव पास किया था कि बाबा को इतनी-इतनी जमीन देनी है। किन्तु एक गुटवाला जाकर कहता था कि "आप हमें दान दें, दूसरे गुटवाले आयें तो उन्हें न दें।" इस तरह तो सर्वत्र ही चलता है। इसलिए दिन-प्रतिदिन बहुत भीषण परिस्थिति होती जा रही है। अभी तक तो जाति और पंथ के ही झगड़े होते थे। अब उनमें दल और गुटों का भी नया झगड़ा पैदा हो गया है।

जब मैं यह कहता हूँ तो कांग्रेस और पी० एस० पी० वाले कहते हैं कि आप तो हमें तोड़ने की बात करते हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि मैं आपको तोड़ना नहीं चाहता इतना ही चाहता हूँ कि आप इस परिस्थिति पर विचार करें। आप सब मेरे पास आकर एक-दूसरे की गलती बताते हैं तो मेरी क्या दशा होती है, इसे जरा समझिये। आप सब मेरे हैं, इसलिए सबकी भूल इकट्ठा होकर मेरी ही कही जायगी। कांग्रेसवाले लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि महागुजरातवालों की दस गलतियाँ हो गयी हैं। भले ही एक की दस और दूसरे की पन्द्रह हों, किन्तु मेरी तो पचीस गलतियाँ हो गयीं, क्योंकि आप दोनों मेरे हैं और दोनों की गलतियाँ मेरी ही हैं। इसलिए क्या इस तरह की बातें सुनकर मुझे आनन्द होगा?

तात्पर्य यही है कि हर क्षेत्र में आज जो झगड़े बढ़ रहे हैं, उनका अब अन्त हो जाना चाहिए। उसकी युक्ति हाथ में आनी चाहिए। मुझे खुद को तो शान्ति-सेना के सिवा दूसरा कोई इलाज नहीं सूझता। यह काम होगा तो इसी काम में से ग्रामदान और भूदान का काम होगा। ये सारी बातें मैं सालों से कह रहा हूँ। गुजरात में तो मेरा निरन्तर यही जप चल रहा है।

● ● ●

अ नु क्र म

१. अब जमीन की मालकियत टिक नहीं सकती
ममदोट २१ नवम्बर '५९ पृष्ठ ८४९
२. सर्वोदयवादियों को भी सेना की अनिवार्यता आश्चर्यजनक
मांगरोल १० अक्तूबर '५८ „ ८५०
३. राज्य-संचालकों को भी अवस्थाकृत अवकाश का नियम क्यों नहीं?
बावरा १५ नवम्बर '५८ „ ८५२
४. विचार में "जय-जगत" और आचार में "जय-ग्रामदान"
उदेपुर १७ अक्तूबर '५८ „ ८५३
५. कार्यकर्त्ताओं का मार्ग-दर्शन
२२ सितंबर '५८ „ ८५६
६. देश में निष्पक्ष समाज और शान्तिसेना अत्यावश्यक
खंभात-डेक ७ नवम्बर '५८ „ ८५९

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा', वाराणसी।